Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

श्रीमद्भगवद्गीता की वर्तमान युग में प्रासंगिकता

डॉ0 ऋतु शुक्ला
असि0 प्रो0 (संस्कृत)
राजकीय महाविद्यालय तिलहर,
शाहजहाँपुर।

शोध आलेख सार– महाभारत में भीष्म पर्व में वर्णित तथा वेदान्त दर्शन के प्रस्थानत्रयी में स्थान प्राप्त भगवान् श्रीकृष्ण की अमृतवाणी श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय संस्कृति का अत्यन्त लोकप्रिय दार्शनिक काव्य है जिसने द्वापर में मोहग्रस्त अर्जुन को धर्मयुक्त कर्मक्षेत्र में प्रवृत्त किया था। गीता समस्त कालों में सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रासंगिक एवं उपादेय है जिसका ज्ञान सार्वकालिक एवं सर्वदेशीय है। वर्तमान युग में मानव जीवन के विभिन्न द्वन्द्वों, कर्त्तव्य–अकर्त्तव्यों, विधेय–त्याज्य इत्यादि परिस्थितियों, व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक समस्त समस्याओं का समुचित समाधान भगवद्गीता में अन्तर्निहित है। वर्तमान युग में मानव की समस्या का मुख्य कारण विषयों के प्रति उसकी आसक्ति एवं मोहग्रस्तता है। सुखाय प्रवृत्ति मनुष्य को प्रतिकूल परिस्थियाँ, दुःख, आकांक्षित विषयभोग प्राप्त न होने की स्थिति में अत्यधिक तनाव तथा मानसिक द्वन्द्व के कारण उसका मनोबल कमजोर हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह गलत निर्णय लेता चला जाता है तथा कुछ तो आत्महत्या जैसे कायरतापूर्ण कृत्य भी कर बैठते हैं। इन स्थितियों में भगवद्गीता की प्रासंगिकता सिद्ध होती है। सम्पूर्ण गीता ऐसे अनेकानेक उपदेशों से परिपूर्ण है जो मानव को धैर्य धारण कर कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का बोध कराते है। गीता में वर्णित धार्मिक सहिष्णुता, निष्काम कर्मयोग, लोकसंग्रह, स्थितप्रज्ञ इत्यादि अनेकानेक सिद्धान्त है जिनकी वर्तमान युग में महती प्रासंगिकता है। प्रस्तुत शोधपत्र में श्रीमद्भगवद्गीता के सिद्धान्तों एवं उपदेशों की वर्तमान युग में प्रासंगिकता पर गहन विचार विमर्श किया गया है।

मुख्य शब्द– श्रीमद्भगवद्गीता, कर्मयोग, लोकसंग्रह, स्थितप्रज्ञ, महाभारत, श्रीकृष्ण, प्रस्थानत्रयी।

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय विचारधारा एवं संस्कृति का एक अत्यन्त लोकप्रिय दार्शनिक, धार्मिक एवं नैतिक काव्य है जो महाभारत के 'भीष्म पर्व' का एक भाग है। वेदान्तदर्शन के 'प्रस्थानत्रयी' में इसे समादरणीय स्थान प्राप्त है। यह समस्त वेदों एवं उपनिषदों का सारसंग्रह है। गीता मात्र एक ग्रन्थ ही नहीं अपितु सहस्त्र वर्षो पूर्व कथित ऐसे उपदेश हैं जो मनुष्य को आज भी उत्तम जीवन जीने तथा जीवन में आने वाली विषम परिस्थितियों में उसका मार्गदर्शन करते हैं। गीता एक नैतिक समस्या पर विचार करते हुए करुणाजनित विषाद से घिरे हुए मोहग्रस्त अर्जुन को धर्मयुक्त कर्मक्षेत्र में प्रवृत्त करने हेतु भगवान श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए उपदेश के माध्यम से समाधान की विस्तृत श्रृंखला की प्रस्तुति है। गीता समस्त कालों में सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रासंगिक एवं उपादेय है जिसका ज्ञान

सर्वकालिक एवं सर्वदेशीय है। यही विशेषता गीता को विश्व में अत्यन्त लोकप्रिय बनाती है। **डा0 राधाकृष्णन** ने इस सम्बन्ध में उचित ही कहा है कि **'मानव मन पर किसी ग्रन्थ का कितना अधिकार है, यदि इसे किसी ग्रन्थ की लोकप्रियता की कसौटी माना जाये तो गीता को भारतीय विचारधारा में सर्वाधिक प्रभावशाली ग्रन्थ कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।**[1]

गीता में कौरव पाण्डव के संघर्ष को धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र, दैवी सम्पद् एवं आसुरी सम्पद्, सजातीय एवं विजातीय, सद्गुणों एवं दुर्गुणों का संघर्ष कहा गया है। यह संघर्ष जहाँ होता है वह स्थान कहाँ है ? गीता का धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र भारत का कोई भूखण्ड नहीं बल्कि स्वयं गीताकार के शब्दों में –

'इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।'[2]

हे कौन्तेय ! यह शरीर ही एक क्षेत्र है, जिसमें बोया हुआ भला और बुरा बीज संस्कार रुप से सदैव उगता है। वास्तव में गीता में युद्ध के रूपक को सामने रखकर गीता के उपदेश का मुख्य प्रयोजन जीवन की समस्या को हल करके न्यायोचित आचरण की प्रेरणा देना है। यहाँ अर्जुन मानवमात्र का प्रतिनिधि है जो जीवन संग्राम में किंकर्त्तव्यविमूढ़ है और अपने कर्त्तव्य – अकर्त्तव्य के अनिर्णय का शिकार है। उल्लेखनीय है कि मनुष्य के जीवन में सदैव ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जिनमें वह कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का निर्णय करने में स्वयं को असमर्थ पाता है जिस कारण वह मानसिक तनाव, अवसाद, विषाद, दुःख, कलह – कलेश इत्यादि अनेक समस्याओं से घिर जाता है तथा जिससे निकल पाना उसे असंभव प्रतीत होता है। अत्यधिक तनाव अथवा मानसिक द्वन्द्व की अवस्था से कमज़ोर मनोबल वाला व्यक्ति या तो विक्षिप्त हो जाता है अथवा आत्महत्या जैसा कायरतापूर्ण कृत्य भी कर बैठता है। ऐसी अवस्था में मानवमात्र को कर्त्तव्य का बोध कराने वाली श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञानरूपी प्रकाश ही हमारा सच्चा पथ प्रदर्शक है, जो हमारे मनोबल को सुदृढ़ बनाकर विषम परिस्थितियों में भी संयम अथवा धैर्य धारण करने की शिक्षा देता है तथा कर्तव्यच्युत होने से बचाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक समस्त समस्याओं का समुचित समाधान अंतर्निहित है। इस जगत में सकल जीवों की प्रायः सुखाय प्रवृति है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी कारण से दुखी है और अपने दुःख की निवृत्ति तथा सुख प्राप्ति हेतु मृगतृष्णा की भाँति बाह्य पदार्थों में ही भटकता रहता है जबकि सुख का स्रोत हमारे भीतर ही विद्यमान है। कोई भी वस्तु अथवा परिस्थिति दुःखदायक अथवा सुखदायक नहीं होती अपितु उसके प्रति हमारे मनोभाव एवं दृष्टिकोण ही उसे सुखदायक अथवा दुःखदायक बनाते हैं। गीता में इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रथम अध्याय के 21–23 श्लोकों में वर्णित अर्जुन की स्थिति से ज्ञात होता है कि आरम्भ में अर्जुन पूर्ण उत्साह के साथ विजय के लिए दृढ़ संकल्पित होकर युद्ध भूमि में आता है[3] किन्तु रणभूमि में अपने सगे संबंधियों को देखकर उसकी मनोदशा परिवर्तित होती है और विषादग्रस्त होकर वह युद्ध की इच्छा त्याग देता है –

'न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।'[4]

''अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।

यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः।।'[5]

तब भगवान श्रीकृष्ण अपने उपदेशों द्वारा युद्ध के प्रति उसके मनोभावों एवं दृष्टिकोण को परिवर्तित करके उसे युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं। इससे स्पष्ट है कि एक ही प्रकार की परिस्थिति होने पर भी दृष्टिकोण में

परिवर्तन मात्र से ही अर्जुन को सुख और दुख का अनुभव हुआ और अन्ततः उसने घोर युद्ध को भी सुख के श्रेय साधन के रूप में स्वीकारा –

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।

स्थितोऽस्मि शतसंदेहः करिष्ये वचनं तव।।[6]

अर्जुन की ही भाँति प्रत्येक व्यक्ति के सुख या दुःख का आधार उसका मानसिक दृष्टिकोण ही है और उसे परिवर्तित करके वह विषम परिस्थितियों में भी सुख का अनुभव कर सकता है। अतएव मन की अद्भुत शक्ति को ध्यान में रखकर गीता में मनोनिग्रह का निर्देश दिया गया है। किन्तु मनोनिग्रह वायु की भाँति अत्यन्त ही दुष्कर कार्य है[7] अतः गीता में मनोनिग्रह की रीति बताते हुए कहा गया है कि निःसन्देह मन बहुत चंचल है किन्तु अभ्यास और वैराग्य से उसका निग्रह किया जा सकता है। ये दोनों मन को वश में करने के साधन हैं।[8] भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के माध्यम से सम्पूर्ण संसार को सफलता का मंत्र बताते हुए कहते है कि यदि मनुष्य अपने लक्ष्य में सफल होना चाहता है तो उसे मन सहित इन्द्रियों को वश में करना अत्यावश्यक है। मनुष्य को इन्द्रियार्थों से इन्द्रियों को उसी प्रकार भीतर समेट लेना चाहिए जैसे कछुआ अपने अंगों को सब ओर से भीतर समेट लेता है –

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।[9]

गीता में विषयासक्ति का त्याग करने का भी निर्देश दिया गया है क्योंकि विषयासक्ति ही मनुष्य के दुःख, विनाश तथा मानसिक अशान्ति का प्रमुख कारण है। गीता के **अध्याय 2** में इसे अत्यन्त व्यावहारिक ढंग से समझाया गया है –

ध्यायतो विष्यान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

संङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।2.62

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। 2.63

अर्थात् विषयों का चिंतन करने वाले मनुष्यों की विषयों में आसक्ति हो जाती है और आसक्ति होने पर उन्हें प्राप्त करने की कामना उत्पन्न होती है। कामनापूर्ति में विध्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से विवेक नष्ट होता है और विवेक के नष्ट होने से स्मृति भ्रमित हो जाती है। स्मृतिभ्रम होने से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि के नाश होने से वह व्यक्ति भी नाश को प्राप्त होता है अर्थात् वह दयनीय एवं शोचनीय अवस्था को प्राप्त होता है। वस्तुतः इन्द्रिय, मन और बुद्धि पर ही मनुष्य की उन्नति और सुख आधारित है अतः गीता में बारम्बार इनके निग्रह का निर्देश प्राप्त होता है। समस्त लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु आत्मनियंत्रण अत्यावश्यक है। इन पर नियन्त्रण रखकर हम स्वयं ही अपने मित्र भी हो सकते हैं अथवा विषयासक्त होकर अपने शत्रु तुल्य भी हो सकते हैं –

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।[10]

श्रीमद्भगवद्गीता द्वारा समस्त संसार के मानव समाज को धार्मिक सहिष्णुता की शिक्षा दी गयी है जो आज भी अनुकरणीय एवं सर्वाधिक प्रासंगिक है। गीता आद्योपान्त धार्मिक सहिष्णुता की भावना से ओतप्रोत है जो भारतीय

संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। गीता के उपदेश किसी सम्प्रदाय विशेष के लिए नहीं हैं अपितु इसकी शिक्षा धर्म, जाति, सम्प्रदाय, देश–काल परिस्थिति की सीमाओं से परे है, सार्वभौम है। गीता सभी उपासना पद्धितयों तथा धर्म के प्रति श्रद्धा रखती है। **भगवान श्रीकृष्ण** सातवें अध्याय में स्पष्टतः घोषित करते हैं कि, '**जो भक्त जिस देवता को श्रद्धा से पूजना चाहता है, मैं उसकी श्रद्धा को उसी में दृढ़ करता हूँ।**[11] वह पुनः घोषित करते हैं, **''श्रद्धा से युक्त होकर जो अन्य देवताओं को पूजते हैं वे भी मुझे ही पूजते हैं, यद्यपि उनकी यह पूजा विधिपूर्वक नहीं है।**[12] इस प्रकार आज के सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश में जहाँ धर्म, आस्था, ईश्वर के नाम पर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का दुश्मन बन गया है वहाँ गीता द्वारा आस्था तथा धर्म विशेष को मानने की स्वतन्त्रता प्रदान करना उसके धर्म सहिष्णुता तथा पंथ–सम्प्रदाय निरपेक्षता का उत्कृष्ट उदाहरण है जो आज के परिवेश में प्रासंगिक भी है।

गीता की प्रमुख शिक्षा निष्काम कर्मयोग की उपयोगिता आज भी निर्विवाद है। सर्वप्रथम गीता में कर्म को अकर्म से श्रेयस्कर बताते हुए निष्काम भाव से कर्त्तव्य कर्म के सम्पादन का उपदेश दिया है। गीता स्थान–स्थान पर यह स्वीकार करती है कि कोई भी मनुष्य क्षण भर के लिए भी कर्म का परित्याग नहीं कर सकता **(न हि कश्चिद् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत)**[13]**।** यदि मनुष्य कर्म करना बन्द कर दे तो सृष्टि चक्र ही रुक जाएगा। गीता अकर्म की अपेक्षा कर्म को श्रेष्ठ मानती है क्योंकि कर्म के अभाव में शरीर का निर्वाह भी असम्भव है। कर्म में भी निष्काम कर्मयोग जिसका अर्थ है कि हम कर्म को सदैव साध्य के रूप में देखें, उसे कभी भी साधन के रूप में ग्रहण न करें। **प्रो0 एम0 हिरियन्ना** का कथन है, **''गीता कर्म में त्याग का उपदेश देती है, कर्म त्याग का नहीं।''** वर्तमान भारतीय परिवेश में जबकि सर्वत्र भ्रष्टाचार, लोभ और अनाचार का वर्चस्व दिखाई पड़ता है, निष्काम कर्मयोग की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। उल्लेखनीय है कि राजनीति और प्रशासनिक सेवाएँ समाज सेवा के साधन हुआ करती हैं किन्तु आज इनकी विश्वसनीयता सन्दिग्ध है और समाज सेवा का साध्य अप्राप्य हो गया है। यदि हमारा वर्तमान नेतृत्व तथा सेवा संवर्ग निष्काम भाव से योजनाओं का निर्माण एवं कार्यान्वयन करें तो लोक सेवा का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है, स्वतन्त्रता आन्दोलन के सपने को साकार किया जा सकता है और भ्रष्टाचार की देशव्यापी समस्या से देश मुक्त हो सकता है। तात्पर्य यह है कि भ्रष्टाचार मुक्त समाज के निर्माण में निष्काम कर्मयोग का आदर्श आज भी समीचीन है।

भगवद्गीता द्वारा प्रतिपादित लोकसंग्रह (सामाजिक आदर्श) का सिद्धान्त पुरुषोत्तम एवं मुक्तात्माओं को लोककल्याण हेतु प्रयासरत दिखाकर मानव को लोककल्याण हेतु प्रेरित करती है। अध्याय 3 में भगवान कहते है कि जनकादि राजा ने नियत कर्म करते हुए ही सिद्धि प्राप्त की। किन्तु प्राप्ति के पश्चात् भी वे लोकसंग्रह को देखकर कर्म करते हैं। अतः तुम्हे भी लोकसंग्रह की दृष्टि से कर्म करना चाहिए।[14] गीता प्रत्येक व्यक्ति से यह आग्रह करती है कि वह जगत की शाश्वत नैतिक व्यवस्था को सुदृढ़ करे जिससे लोकसंग्रह या लोक कल्याण में कोई व्यवधान न हो।[15] लोकसंग्रह आदर्श प्राप्ति के साधन के रूप में स्वधर्म के सिद्धान्त का विधान करती है। गीता लोकसंग्रह हेतु मात्र कर्म करने के लिए ही नहीं कहती अपितु अनासक्त भाव से, निष्काम भाव से अपने सामाजिक कर्त्तव्यों के पालन करने का निर्देश देती है। गीता में स्वधर्म अर्थात् अपने अपने कर्त्तव्यों का पालन लोकसंग्रह प्राप्ति का साधन बताया गया है। भगवान श्रीकृष्ण ने सामाजिक कर्त्तव्यों, मुख्यतः ऐसे कर्त्तव्यों को जो समाज मे एकता लाने के लिए तथा एकता बनाए रखने के लिए साधनस्वरूप हैं उनको स्वधर्म कहा है। गीता में अपने कर्त्तव्यों का पालन ही सच्ची ईश्वर पूजा कहा है **(स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः)**[16]**।** वस्तुतः गीता द्वारा स्वधर्म के

प्रतिपादन का लक्ष्य यह था कि समाज व्यवस्था एवं सृष्टि की गति निर्बाध रूप से चलती रहे, लोक कल्याण हो तथा समाज में अधिकारों के लिए कोई संघर्ष न हो। गीता का सर्वोच्च लक्ष्य हिन्दू समाज को एकता के सूत्र में बाँधना तथा लोगों में कर्त्तव्य की चेतना जागृत करना है।

गीता में स्थितप्रज्ञ की अवधारणा भी वर्तमान युग में प्रासंगिक है। स्थितप्रज्ञ वह है जिसकी प्रज्ञा या बुद्धि स्थिर हो जाती है। स्थितप्रज्ञ में सभी कामनाओं एवं वासनाओं का परित्याग हो जाता है। वह सदैव अपने में अपने से ही सन्तुष्ट रहता है। स्थितप्रज्ञ शुभ और अशुभ, प्रिय एवं अप्रिय सभी स्थितियों में तटस्थ रहता है क्योंकि वह समझता है कि ये सभी स्थितियाँ ईश्वर के अधीन हैं। अतः वर्तमान समाज में जब मनुष्य का प्रतिदिन इन परिस्थितियों से साक्षात्कार होता है तब 'स्थितप्रज्ञ' की स्थिति का अनुकरण करना उसके लिए श्रेयस्कर रहेगा। यदि वह जीवन में घटित होने वाली प्रतिकूल परिस्थितियों को भी ईश्वराधीन मानकर धैर्यपूर्वक संयमित होकर व्यवहार करे तो उद्विग्नता, शोक, तनाव, निराशा आदि उसके जीवनचर्या को प्रभावित नही कर सकते।

अतः यह स्पष्ट है कि गीता का प्रत्येक वाक्य आधुनिक समाज के लिए शिक्षा से ओतप्रोत है। गीता की शिक्षा को अपने जीवन में धारण करने वाला व्यक्ति जीवन की बड़ी से बड़ी परेशानी में भी अपने कर्त्तव्यपथ से विचलित नही हो पाता। गीता का अभ्यासी संसार का सत्य जान लेने के बाद पथभ्रष्ट नही होता। गीता के बारे में वराह पुराण में भगवान कहते हैं –

गीताश्रयेहं तिष्ठामि गीता में चोत्तमं गृहम्।[17]

अर्थात् मैं गीता के आश्रय में रहता हूँ। गीता मेरा श्रेष्ठ घर है। इसका अभिप्राय है कि गीतापाठ से ईश्वर का सान्निध्य मिलता है। गीता की यह शिक्षा कि व्यक्ति को अपने संकीर्ण स्वार्थपरक आवेगों को जीतना होगा आज भी उतनी ही मूल्यवान एवं समीचीन है। काम, क्रोध, लोभ आदि पर विजय प्राप्त करने की शिक्षा आज भी लोकहितकारी है। पुनः विभिन्न भाष्यकारों द्वारा समय–समय पर गीता पर लिखे गए भाष्यों की विविधता तथा आज भी गीता के उपदेशों के प्रति मनुष्य की गवेषणात्मक प्रवृत्ति इसकी प्रासंगिकता की ही द्योतक है। भारत ही नहीं अपितु विश्व के अनेक देश अमरीका, जर्मनी, फ्राँस आदि में गीता के उपदेशों के अध्ययन हेतु बड़े–बड़े शोध हो रहे है जो इसकी वर्तमान में प्रासंगिकता एवं उपादेयता को इंगित करता है। गीता की अमर शिक्षा की उपयोगिता आज भी उतनी ही है जितना अतीत में थी।

सन्दर्भ

1. डॉ0 राममूर्ति पाठक – 'भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रुपरेखा' पृ0 41
2. श्रीमद्भगवद्गीता – अध्याय 13 श्लोक 2
3. श्रीमद्भगवद्गीता – 1.21–23
4. श्रीमद्भगवद्गीता – 1.31
5. श्रीमद्भगवद्गीता – 1.44
6. श्रीमद्भगवद्गीता – 18.73
7. चंचलं ही मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़म्।
   तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। गीता. 6.34
8. असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। गीता 6.35

9. गीता. 2.58
10. गीता 6.5
11. यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
    तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।। गीता 7.21
12. येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
    तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।। 9.23
13. गीता – 3.5
14. कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
    लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।। गीता 3.20
15. गीता – 3.25
16. गीता – 18.46
17. वराहपुराण